Gyanvividha, Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026 : PP-28-31

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026
Page No.- 28-31
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com
Author's :

1. डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पण्डित सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

2. श्रीमती शालिनी सिंह

शोधार्थी, हिंदी, पण्डित सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर.

Corresponding Author :

श्रीमती शालिनी सिंह

शोधार्थी (हिंदी), पण्डित सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर.

भक्तिकालीन समाज और कबीरदास

शोध सारांश : कबीरदास जी का जन्म एक ऐसे दौर में हुआ, जबकि हिंदू समाज पर मुस्लिम शासकों के द्वारा अत्याचार किया जा रहा था। हिंदू समाज पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा था। समाज का भक्ति-भाव तथा परमात्मा पर विश्वास डोल रहा था। तब कबीरदास जी की वाणी ने समाज को पुनः भक्ति के मार्ग पर प्रशस्त किया। जब मंदिर तोड़े जा रहे थे, धर्म ग्रंथ जलाए जा रहे थे, तब कबीर ने जनता को निर्गुण भक्ति की तरफ मोड़ा। भले ही सगुण ईश्वर की मूर्ति टूट सकती है, किंतु जनता के हृदय में निर्गुण ब्रह्म के प्रति विश्वास की लौ को कोई नहीं बुझा सकता। इसी विश्वास का सहारा लेकर भारतीय समाज उस समय विपत्तियों से लड़ने और अपने अस्तित्व को बनाए रखने का साहस बटोर सका। भक्तिकालीन समाज का नजरिया स्त्रियों भी के प्रति अत्यंत कठोर था। नारी स्वतंत्रता के परम विरोधी उस समाज में भी कबीर ने लोई का साथ जीवन भर निभाया। कबीर ने अपने पदों के माध्यम से भक्तिकालीन हिंदू समाज में व्याप्त वर्ण-भेद, अस्पृश्यता, आडंबर, पाखण्ड एवं अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य किया तथा समाज को जागृत करने का प्रयास किया।

बीज शब्द : भक्तिकाल, हिंदू समाज, कबीर, मुसलमान, वर्ण-भेद, सामाजिक असमानता।

मूल आलेख : जैसा कि विदित है कि भक्तिकालीन समाज अर्थात् वह समाज जहाँ की जनता को केवल भगवान का ही सहारा था। समाज में भागवत धर्म की महत्ता थी। ऐसे समाज में संत कबीरदास जी का प्रादुर्भाव हुआ। समाज में मुस्लिम शासकों का वर्चस्व था। धर्म में अंतर होने के कारण मुस्लिम शासकों का दुर्व्यवहार हिंदू समाज की जनता को झेलना पड़ता था। भक्तिकालीन समाज में जनता मुस्लिम शासकों से आतंकित थी। ऐसे समय में महामानव संत शिरोमणि कबीरदास का समाज में प्रादुर्भाव हुआ। तत्कालीन समाज विभिन्न वर्णों, भिन्न-भिन्न जातियों एवं उपजातियों में बँटा हुआ था। डॉ. नागेंद्र अपने ग्रंथ हिंदी

साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन समाज में प्रचलित विभिन्न को प्रथाओं के व्याप्त होने का जिक्र करते हैं। "तत्कालीन स्मृतियों के अनुसार दासों की चार कोटियां थीं : जन्मजात, क्रीत, अपहृत या कहीं से प्राप्त, अपने यहां उत्पन्न। समाज में बहुविवाह या पुनर्विवाह की प्रथाएं भी प्रचलित थीं। विदेशी पर्यटकों ने तत्कालीन सतीप्रथा का भी विवरण दिया है। ओडरिक (1321-1322) नामक पादरी ने दक्षिण भारत में प्रचलित सती-प्रथा का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार पुत्रवती विधवा को 'सती' बनने का अधिकार नहीं था। इब्नबतूता ने लिखा है कि सती होने के लिए सुल्तान की पूर्व-स्वीकृत अनिवार्य थी। स्त्रियों को पुरुषों जैसा स्तर तथा सम्मान प्राप्त न था। परदा-प्रथा उन दिनों की आवश्यकता बन गई थी। फिर भी स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था थी। और कला-साहित्य के निर्माण में स्त्रियों का योगदान रहा करता था। हिंदुओं में संयुक्त परिवार पाए जाते थे, जो सामाजिक जीवन के मूलाधार थे। छुआछूत के नियम इतने कठोर थे कि शुद्रादि जातियों तक में परस्पर भेदभाव बरता जाने लगा था।"[1] तत्कालीन समाज में दास प्रथा, सती प्रथा, विधवा विवाह, पुनर्विवाह, जाति प्रथा, धर्मान्तरण, बाल विवाह इत्यादि कुप्रथाओं का प्रचलन था। कबीरदास ने समाज में व्याप्त कर्मकाण्ड और मूर्ति पूजा का विरोध किया। कबीर ग्रंथावली में श्यामसुंदर दास कहते हैं कि कबीर के उपदेश से उनके शिष्य धर्मदास का हृदय परिवर्तन हुआ। "धर्मदास और सुरतगोपाल नाम के कबीर के दो चेले हुए। धर्मदास बनिए थे। उनके विषय में लोग कहते हैं कि वे पहले मूर्तिपूजक थे। उनका कबीर से पहले पहल काशी में साक्षात्कार हुआ था। उस समय कबीर ने उन्हें मूर्तिपूजक खोने के कारण खूब फटकारा था। फिर वृंदावन में दोनों की भेंट हुई। उस समय उन्होंने कबीर को पहचाना नहीं, पर बोले - 'तुम्हारे उपदेश ठीक वैसे हैं जैसे एक साधु ने मुझे काशी में दिए थे।' इस समय कबीर ने उनकी मूर्ति को, जिसे वे पूजा के लिए सदैव अपने साथ रखते थे, जमुना में डाल दिया। तीसरी बार कबीर स्वयं उनके घर बाँधोगढ़ पहुँचे। वहाँ उन्होंने उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्ति पूजते हो जिसके तुम्हारे तौलने के बाट हैं। उनके दिल में यह बात बैठ गई और ये कबीर के शिष्य हो गए।"[2]

भक्तिकालीन समाज हिंदू और मुस्लिम समुदाय में विभाजित था। दोनों समुदायों में सदैव मतभेद और विवाद की स्थिति बनी रहती थी। कबीरदास जी ने हिंदू और मुसलमान दोनों के धर्म प्रधानों को जनता को गुमराह करने के लिए खूब फटकार लगाया। और उनकी एकता के लिए सदैव प्रयास करते रहे। वे राम और रहीम दोनों को समान मानते थे। कर्मकांड का विरोध उनकी वाणी में साफ झलकता है। "धार्मिक सुधार और समाज सुधार का घनिष्ठ संबंध है। धर्म-सुधारक को समाज-सुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाज-सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है। हिंदुओं की जाति-पाँति छुआछूत, खान-पान आदि के व्यवहारों और मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने, मुसलमानी आदि कराने का उन्होंने चुभती भाषा में विरोध किया है और इनके विषय में हिंदू -मुसलमान दोनों की जी भरकर धूल उड़ाई है। हिंदुओं के चौके के विषय में वे कहते हैं -

'एकै पवन एक ही पाणी करी रसोई न्यारी जानी।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ धूँ छोती।।
धरती लीपि पवित्तर किन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं।
याका हम सूँ कहो विचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इही आचारा।।"[3]

तत्कालीन समाज में छुआछूत और अस्पृश्यता व्याप्त थी। उच्च जाति का निम्न जाति से छुआछूत का भाव रखना, हिंदुओं का मुसलमान से छुआछूत समझना बड़ी आम बात थी। कबीर ने छुआछूत का खंडन करने हेतु अनेक पदों की रचना की -

"काहैं कि कीजै पाँडे छोति विचारा, छोतिहिं ते उपना संसारा ।।
हमारे कैसें लौहू तुम्हारे कैसें दूध। तुम्हें कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।।

छोति छोति करता तुम्हहीं जाए। तौ ग्रभवास काहे को आए।।
जनमत छोति मरत ही छोति। कहै कबीर हरि की निर्मल जोति।।"[4]

कबीर एक तरफ हिंदू समाज में व्याप्त बलि प्रथा का विरोध करते हैं, तो दूसरी तरफ मुस्लिम समुदाय को पशु हिंसा के लिए फटकार लगाते हैं।

"दिन भर रोज रहत है राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय।।
अपनी देखा करत नहीं अहमदक, कहत हमारे बड़न किया।
उसका खून तुम्हारी गरदन, जिन तुमको उपदेश दिया।।
बकरी पाती खाति है ताको काढ़ी खाल।
जोनर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल।"[5]

भक्तिकालीन समाज में आम जनता के लिए जीविकोपार्जन की समस्या भी विषद थी। पण्डित एवं मुल्ला अंधविश्वास फैलाकर, समाज में कर्मकांड का सहारा लेकर, ईश्वर का डर दिखाकर जनता से मूर्ति पूजा, तंत्र क्रिया आदि करवाते थे। मध्यकालीन हिंदू समाज तीर्थाटन, मूर्ति पूजा, कर्मकांडी पद्धति, स्वर्ग-नरक, श्राद्ध, पिंडदान, पूजा, उपासना इत्यादि में विश्वास करता था। "कबीर में समाज एकता की भावना अति प्रबल है। कबीर ने स्वयं संवेद्य ज्ञान के आधार पर साधना की विभिन्न भूमिकाओं का वर्णन किया है तथा उसके साथ समाज एकता की भावना को स्थापित किया। अपने स्वयं संवेद्य ज्ञान के आधार पर ही समाज को विखण्डित तथा विलगित करने वाले तत्वों पर कबीर प्रहार करते हैं। कबीर ने सिद्धों के क्रियाकलापों की अवहेलना की, बौद्ध तथा शाक्त मतावलम्बियों की आलोचना की, मनुष्य को उदात्त जीवन दृष्टि प्रदान की है। उनके लिए सबसे बड़ा सत्य तथा मूल्य मनुष्य है। ब्राह्मण, शुद्र, हिंदू-मुसलमान अथवा मुल्ला-पाण्डे, जैन-बौद्ध, शाक्त-वैष्णव आदि सभी मनुष्य रुप में समान तथा एक हैं। मंदिर, मस्जिद, तीर्थ-स्थान आदि मनुष्यता को खण्डित करते हैं। कबीर ने वर्भेद तथा वर्णभेद की भावना पर निर्मम प्रहार किया।"[6] कबीर और तत्कालीन भक्तिकालीन समाज के विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भी यही लिखा है - "पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर सबसे शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक व्यक्ति थे। संयोग से वे ऐसे युग संधि के समय उत्पन्न हुए थे, जिसे हम विविध धर्म-साधनाओं और मनोभावनाओं का चौराहा कह सकते हैं। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं, वे प्रायः सभी उनके लिए बंद थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे।"[7]

निष्कर्ष : इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकाल में भक्तिभाव की प्रधानता तो थी, किंतु समाज में विभिन्न संप्रदाय तथा कुप्रथाएँ भी व्याप्त थी। तत्कालीन समाज में जहाँ एक ओर विधवा-विवाह, बहु-विवाह, बाल विवाह, पुनर्विवाह, सती प्रथा, दास प्रथा जैसी कुप्रथाएँ फैली थी, तो दूसरी ओर समाज हिंदू और मुस्लिम संप्रदाय में विभक्त था। भारतीय समाज धार्मिक पाखंड, मूर्ति पूजा, कर्मकांड में विश्वास, जातिवाद, अंधविश्वास, अस्पृश्यता, सामाजिक असमानता का प्रतीक बन चुका था। ऐसे समाज के सुधारक के रूप में कबीर दास जी का प्रादुर्भाव हुआ। जिन्होंने इन समस्त सामाजिक परंपराओं का पुरजोर विरोध अपने उपदेशों के माध्यम से किया। हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया तथा तत्कालीन समाज में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया। ईश्वर के प्रति विश्वास को मूर्ति पूजा से परे उन्होंने निर्गुण परमात्म ब्रह्म के रूप में स्थापित किया। विभिन्न संप्रदाय एवं मतों से सारभूत तथ्यों को लेकर सदियों से जनता के मध्य फैले अंधविश्वास को अपनी वाणी के माध्यम से दूर करने तथा उनमें नव जागृति लाने का

प्रयत्न किया। संत शिरोमणि कबीरदास जी के माध्यम से अत्यंत सरल और बोलचाल की भाषा में समाज को उपदेश दिया गया। विभिन्न संस्कृतियों के मध्य उन्होंने समन्वय स्थापित किया। कुरीतियों पर करारा व्यंग्य करते हुए क्रांतिकारी स्वर छेड़ा। उनके विचारों का भक्तिकालीन समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा तत्कालीन समाज में सामाजिक चेतना विकसित हुई।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. नगेंद्र, डॉ. हरदयाल. हिंदी साहित्य का इतिहास. नयी दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2016, पृष्ठ संख्या-89.
2. दास, श्यामसुंदर. कबीर ग्रंथावली. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 30.
3. वही, पृष्ठ संख्या 45.
4. वही, पृष्ठ संख्या 46.
5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन, 2020, पृष्ठ संख्या 73
6. मोहन, वीरेन्द्र. भक्ति काव्य और मानव मूल्य. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान, 1986, पृष्ठ संख्या 78-79.
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या-75.

•